Social Relevance of Philosophy

Dr Anupam Jash

Social Relevance of Philosophy

Essays on the Relevance of
Philosophy in the Strife Torn World Today

Edited by

Dr Anupam Jash

Jain Bhawan
CALCUTTA

Social Relevance of Philosophy

Edited by Dr Anupam Jash

© Editor

First Published 2015

ISBN: 978-93-83621-83-5

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted, in any form or by any means, without prior permission of the editor and the publisher

Price : Rs. 750/-

Published by
Jain Bhawan
P-25, Kalakar Street
Calcutta-700007

Proceedings of the UGC Sponsored National Seminar on
"The Relevance of Philosophy in the Strife Torn World Today"

Organized by
Department of philosophy, Bankura Christian College
In association with
Diocese of Durgapur, Church of North India

Department of Philosophy, Bankura Christian College
October 07 & 08, 2015

ORGANIZING COMMITTEE

Chief Patron : *Rt. Rev. Dr.Probal Kanto Dutta*
Hon'ble Bishop, Diocese of Durgapore.
Chairman: *Dr. Fatik Baran Mandal*
Teacher-in-Charge, Bankura Christain College
Convener : *Prof. Mousumi Das*
Organizing Secretary : *Dr. Anupam Jash*
Joint-organizing Secretary : *Prof. Shaymal Kumar Palit*

Advisory Committee

Dr. Chandan Mukherjee (Bursar)
Dr. Narugopal Mukherjee (Co-ordinator, IQAC)
Dr. Manoranjan Chakraborty (TR, GB)
Dr. Bipul Sarkar (ATCS)
Dr. Arindam Sen
Dr. Subikash Chowdhury (TR, GB)
Dr. Chandranath Chatterjee (TR, GB)
Dr. Utpal Kumar Samanta (TCS)
Dr. Bikash Chakraborty
Sri Druheen Chakraborty

Content

1. **Cultivating A Philosopher's Perspective: A Remedy in The Present Crisis** 1
   Dr Ahinpunya Mitra
2. **Role of Empathy in Our Moral Value System.** 6
   Aparna Sadhu
3. **Realizing The Four Noble Truths in Contemporary World** 14
   Dr Arindam Bhattacharyya
4. **Is Sallekhana A Suicide?** 17
   Dr Arup Kr. Dhabal
5. **The Roles of Jaina Ahimsha and its Social Importance** 22
   Dalim Sk
6. **Theology & Comparative Religion- An Understanding** 28
   Debapriya Ghosh
7. **The Concept of Purusarthas and its Contemporary Understanding in Reference to Carvaka Philosophy** 35
   Debirupa Basu
8. **The Philosophical Base of Governance, Contribution of Thinkers: With Special Reference to Jharkhand'** 44
   Dr Harihar Padhan
9. **Moral Emotions: Apology and Forgiveness** 51
   Jeremiah Amai Veino Duomai
10. **Critical Examination of Duhkha (sufferings) in the Context of *Mûlamadhyamakakârikâ* of Nâgârjuna** 58
    Dr Kuheli Biswas
11. **Philosophy of Sarvodaya and Contemporary Society** 63
    Mousumi Das
12. **Erosion of Values and Present Society** 67
    Paramita Ghosh
13. **The Role of Moral Values and its Impact In Society** 72
    Paromita Roy
14. **Message of The Bhagavat Gita and World Today** 77
    Poulami Chakraborty
15. **Society and Changing Values** 84
    Pradipta Mukhopadhyay
16. **Relevance of Philosophy in 21st Century** 89
    Dr Sachchidananda Mishra

17. **Relevance of Rabindranath Thakur's Philosophical Views in *'Siksha'* in Our Present Society** 99
    Sampriya Chatterjee
18. **Relevance of Swami Vivekananda in Modern World** 105
    Dr Shweta Smrita Soy
19. **Mystical Power in Jainism** 112
    Dr Samani Agam Prajna
20. **'Sophists' - Their Origin and Contribution** 117
    Subhasish chakrabarty
21. **The Relevance of Moral Philosophy in Real Life** 122
    Dr Sunil Kumar Das
22. **Philosophy and its Relevance** 128
    Dr Tofajal Hossain
23. **Concern for Animals: Review of the Indirect Duty Theory** 134
    Uttam Kr. Mukhopadhyay
24. ***Upanisad aur Bauddha Darshan Me Anekant Drsti*** 143
    Vandana Mehta

24

उपनिषद् और बौद्ध दर्शन में अनेकान्त दृष्टि

— डॉ. वंदना मेहता

जैन दर्शन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त 'अनेकान्तवाद' है। 'अनेकान्तवाद' शब्द तीन शब्दों के मेल से बना हुआ संयुक्त शब्द है। वे तीन शब्द हैं– अनेक+अन्त+वाद। 'अनेकान्तवाद' शब्द का अर्थ इन तीनों शब्दों के अनुरूप ही है। अनेक का सीधा सा अर्थ है– एक न होकर बहुत, अन्त का अर्थ है– धर्म अथवा गुण और वाद का अर्थ यहाँ पर कथन है।

जैन दर्शन के मन्तव्य के अनुसार जगत् की प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मों का पुंज है, असंख्य गुणों का समूह है। इसीलिए उस सिद्धान्त को अनेकान्तवाद कहा जाता है, जिसमें वस्तु के किसी एक धर्म का नहीं, अपितु वस्तुगत समस्त धर्मों का समादर किया जाता है। स्याद्वादमंजरी की टीका में अनेकान्तवाद का स्वरूप बताते हुए कहा है– **अनन्ताधर्मात्मकं वस्तु।**[1] तत्त्व क्या है? इसके उत्तर में कहा गया है कि– **अनन्ताधर्मात्मकमेव तत्त्वम्**। अर्थात् वस्तु अपने आप में अनन्त है, पर उसके समग्र रूप को कभी एक साथ व्यक्त नहीं किया जा सकता। 'अनेकान्तवाद' वस्तुतः 'वाद' अर्थात् विवाद नहीं है, वह तो एक प्रकार का संवाद है। अतः अनेकान्त के साथ प्रचलित अर्थ में 'वाद' न लगाकर 'दृष्टि' लगाना ही अधिक उपयुक्त है। अनेकान्त–दृष्टि, वह दृष्टि है जिसमें किसी एक ही धर्म और गुण को नहीं पकड़ा जाता, बल्कि एक को प्रधानता दी जाती है। जब एक को प्रधानता दी जाती है तो यह स्वाभाविक है कि शेष को गौणता प्राप्त हो जाती है। गौण–प्रधान–भाव से वस्तु का कथन करना इसे ही अनेकान्त–दृष्टि अथवा अनेकान्तवाद कहा जाता है। जैसा कि पहले बताया गया है– 'वाद' का अर्थ है– कथन करना।

भगवान् महावीर ने जो कुछ कहा था वह उनके कहने से अनेकान्तमय नहीं हुआ, लेकिन पदार्थों की जैसी स्थिति थी, वैसा ही उनका कथन था। यथार्थ का ज्ञाता एवं द्रष्टा ही यथार्थ–भाषी होता है, अन्यथा–भाषी नहीं।

अनेकान्त–दृष्टि अथवा अनेकान्तवाद, क्या जैन परम्परा का ही एकमात्र सिद्धान्त है? क्या वैदिक परम्परा में और बौद्ध परम्परा में इस प्रकार के विचार उपलब्ध नही है? निश्चय ही वहां पर भी इस प्रकार के विचार उपलब्ध होते हैं। वैदिक–परम्परा का आदि–ग्रन्थ 'ऋग्वेद' माना जाता है। ऋग्वेद मे इस प्रकार के विचारों के सूक्ष्म बीज यत्र–तत्र बिखरे हुए उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा है– **एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।**[2] सत्य एक ही है, किन्तु विद्वान् लोग उसका कथन अनेक प्रकार से करते हैं। मुण्डकोपनिषद् में एक शिष्य ने गुरु से प्रश्न किया, "वह कौनसी वस्तु है, जिसके ज्ञान से वस्तुमात्र का ज्ञान हो जाता है"। इसके उत्तर में गुरु ने कहा था– **एकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेन मृण्मयं विज्ञातं स्यात्**[3] मिट्टी के एक ढेले को जान लेने पर सारी मिट्टी का ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार का प्रश्न छान्दोग्योपनिषद् में पूछा गया है। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि उपनिषद् काल के ऋषियों ने भी इस अनेकान्त पर अवश्यमेव विचार किया है।

[1] स्याद्वादमंजरी, 22 की टीका

बौद्ध–परम्परा में अनेकान्तवाद और अनेकान्त–दृष्टि जैसे शब्दों का प्रयोग तो नहीं है, किन्तु, जैन–परम्परा के स्याद्वाद से मिलता–जुलता एक शब्द बौद्ध–परम्परा के साहित्य में उपलब्ध होता है– 'विभज्यवाद'। विभज्यवाद का प्रयोग सर्वप्रथम जैन अंग–सूत्र 'सूयगडो' में आया है– **विभज्जवायं च वियागरेज्जा।**[4] अर्थात् विभज्यवाद की पद्धति से बोलना चाहिए। विभज्यवाद का सामान्य अर्थ है– विभाग करके कथन करना। बुद्ध जब किसी भी तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं, तब वे सापेक्षतावाद को ध्यान में रखकर ही कथन करते थे। बौद्ध परम्परा का मध्यम मार्ग एक प्रकार से जैन परम्परा के स्याद्वाद और अनेकान्तवाद का ही एक प्रतीक है। जैन दर्शन जिस प्रकार जगत् को सत् एवं असत् कहता है, उसी प्रकार माध्यमिक बौद्ध भी कहता है। अस्ति और नास्ति ये दोनों अन्त है, शुद्धि और अशुद्धि ये दोनों भी अन्त हैं। तत्त्वज्ञानी इन दोनों अन्तों को त्यागकर मध्य में स्थित होता है। समाधिराज–सूत्र में कहा गया है–

अस्तीति नास्तीति उभेऽपि अन्ताः, शुद्धि–अशुद्धि इमेऽपि अन्ताः।
तस्माद् उभे अन्त विवर्जयित्वा, मध्ये हि स्थानं प्रकरोति पण्डितः।।

बौद्धों के अनुसार– बाह्य और आभ्यन्तर पदार्थ समुदाय बाहर और अन्दर की वस्तुओं का समूह– नित्य सत्ता वाला है और उसकी प्रतीति में क्षणिकत्व उसके साथ मिला हुआ है वह पदार्थ समूह– सन्तान अथवा प्रवाह रूप से नित्य और प्रत्येक रूप से क्षणिक–अनित्य है।

यह कथन जैन दर्शन के अनेकान्तवाद (नित्या नित्यत्ववाद) का असन्दिग्धतया समर्थन कर रहा है।

नागार्जुन ने "माध्यमिक कारिका" में अनेकान्तवाद के समर्थन में एक और तर्क प्रस्तुत किया है–

[2] ऋग्वेद, 1.164.46
[3] मुण्डकोपनिषद् 6.1.4
[4] सूयगडो, 1.13